IJAER/March-April-2022/Volume-11/Issue-2 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

नागार्जुन के उपन्यासों का सामाजिक तथा आलोचनात्मक अध्ययन

पराशर त्रिपाठी (शोधार्थी) , सनराइज यूनिवर्सिटी अलवर (राजस्थान)

डॉ0 कविता सिंह (एसोसिएट प्रोफेसर) , सनराइज यूनिवर्सिटी अलवर (राजस्थान)

नागार्जुन का यज्ञ उनके कविरूप के कारण हिंदी साहित्य में अक्षुण्ण है। हिंदी साहित्य का इतिहास प्रगतिवादी कवि के रूप में नागार्जुन को विशिष्ट स्थान देता है। लेकिन नागार्जुन सफल उपन्यास लेखक भी हैं। उपन्यास लेखक के रूप में नागार्जुन का गलत मूल्यांकन हो रहा है। उनके उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास कहा जा रहा है। इस तरह नागार्जुन को रेणु की परम्परा में सफल आंचलिक उपन्यासकार के रूप में उनके उपन्यासों के मूल्यांकन की गलत दिशा निर्धारित होती जा रही है। नागार्जुन के उपन्यासों में अंचल है, आंचलिकता नहीं है। फार्मूलाबद्ध मूल्यांकन दृष्टि का जो कुपरिणाम हो सकता है, नागार्जुन के साथ हो रहा है। स्थानीय दृश्यों, प्रकृति, लोकरीति, पर्व–त्योहार, रीति–रिवाज भाषा में पात्रों के द्वारा बातचीत के ढंग, उच्चारणीयता आदि के कारण नागार्जुन के उपन्यासों को आचंलिक कह दिया गया है। यह सही है कि अंचल विशेष के यथार्थ जीवन–दशा का सही–सही कथा वर्णन, स्थिति चित्र, इन्हीं स्थानीय विशेषताओं के कारण ही आता है। पर आंचलिक उपन्यासों में इन स्थानीय विशेषताओं से यथार्थ अधिक जीवित, ताजा और भरोसा के लायक हो जाता है। सिर्फ इन्हीं विशेषताओं से उपन्यास आंचलिक नहीं हो जाता। नागार्जुन के उपन्यास आंचलिक क्यों नहीं हैं, व्यक्तिपरक सामाजिक, यथार्थ वाले उपन्यासों से आंचलिक उपन्यासों की प्रकृति कैसे भिन्न है, आंचलिक उपन्यास के व्यवच्छेदक गुण क्या हैं – इसका उचित और तार्किक उत्तर सप्रमाण आपको दृष्टिगोचर होता है। हिंदी का पहला आंचलिक उपन्यास आचार्य शिवपूजन सहाय का 'देहाती दुनिया' है। 'देहाती दुनिया' को आचार्य शिवपूजन सहाय ने आंचलिक उपन्यास के रूप में नहीं लिखा था लेकिन वह उपन्यास आंचलिक बन गया। लेकिन नागार्जुन ने आंचलिक उपन्यास के रूप में यदि अपने उपन्यास लिखे भी हैं, और बलचनमा को तो लिखा ही है, तब भी दुर्भाग्य से नागार्जुन के कोई उपन्यास आंचलिक नहीं बन पाये हैं। आंचलिक उपन्यास चर्चा में आये रेणु के मैला आंचल (1954) के प्रकाशन से। मैला आंचल वास्तव में आंचलिक उपन्यास की कसौटी है और रेणु हैं आंचलिक उपन्यास लेखक के रूप में मास्टर पीस प्रतिमान और प्रमाण। रेणु के उपन्यासों को ध्यान से पढ़ते हुये उसकी कथा से गुजरते समय यह लगता रहता है कि उनके उपन्यासों में व्यक्ति नायक नहीं है। रेणु के उपन्यासों का नपायक अंचल है। अंचल ही उपन्यास का केन्द्र है। आंचलिक उपन्यास में नायक अंचल होता है, व्यक्ति नहीं। नागार्जुन के उपन्यासों के नाम ही व्यक्तिपक हैं। बलचनमा,

दुखमोचन, इमरितिया, गरीबदास, बाबा बटेसर नाथ। जिन उपन्यासों के नाम व्यक्तिपरक नहीं हैं, उनमें भी कथा केन्द्र में व्यक्ति ही है, अंचल नहीं। नयी पौध (नई पौध) रतिनाथ की चाची, वरुण के बेटे, कुंभीपाक, मार्यादा पुरुषोत्तम, हीरक जायंती के केन्द्र में कहीं से भी नायक के रूप में अंचल नहीं है। उपन्यास की संरचनात्मक प्रविधि में नाना भांति की भिन्नताओं के बावजूद व्यक्तिपरक उपन्यासों से आचंलिक उपन्यासों की प्रविधि में कथा के साथ उपकथा के सम्बन्ध को लेकर देखा जाता है। आधिकारिक कथा के साथ उपकथा का प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष दोनों ही तरह का सम्बन्ध हो सकता है। यह सम्बन्ध केवल व्यक्तिपक उपन्यासों में होता है। आधिकारिक कथा से उपकथा का सम्बन्ध, आंचलिक उपन्यासों में हो ही नहीं सकता। उपकथा या उपकथाएं अंचल की ओर प्रभावित रहती हैं, केन्द्रमुखी रहती हैं। कथा और उपकथा व्यक्तिपरक उपन्यासों में व्यक्ति के जीवन चरित्र को पुष्ट करती हैं जबकि आंचलिक उपन्यासों की कथाएं और उपकथाएं अंचल के जीवन–चरित्र को पुष्ट करने वाली होती हैं। आंचलिक उपन्यास की कथा सुश्रृंखलित नहीं रहती। आंचलिकता के लिये कथा का सुश्रृंखलित विधा तक और बाधक तत्त्व हैं। आंचलिक उपन्याय की क्षेत्रीय विशेषतायें सूचनात्मक नहीं, दृष्यांकित होती हैं। दृष्यांकन का माध्यम है भाषा। रेणु ने स्थानीय रंग को उभारने के लिये वृतांत की भाषा रची है। अंचल को ऊँचा कद देने के लिये पर्व त्योहार, किंवदन्तियां, क्षेत्र के आचरण, विद्यापत नाच, श्यामचकेवा, स्त्रियों के गीत, पुरुषों के गाने–सारे विवरण दृश्यांकन के लिए रखे हैं, वृत्तांत भी दृश्य हैं। नागार्जुन में सिर्फ विवरण है, एक सूचनात्मक वर्णन। कथा सुश्रृंखलित है। कथा और उपकथा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। न आधिकारिक कथा, न उपकथा केन्द्रमुखी है, सब अंचलाभिगामी यानी बहिर्मुखी, व्यक्ति के चरित्र की ओर दौड़ती चलती है। घटना स्थल और घटनायें व्यक्तिपरक उपन्यास की बुनावट में अंचल को छोड़कर व्यक्ति चरित्र का महत्व प्रदान करते हैं। तरकुलबा, शुभंकरपुर, रामपुर, टमका कोयली, मधपुरा नागार्जुन के उपन्यासों के घटना स्थल हैं। यही अंचल मान लीजिए उपन्यास की घटनाएं, पात्रों के चरित्र, भौगालिक स्थिति रिवाज, स्थानीय विशेषताओं के साथ उसे ही महत्व प्रदान करते कथानक की ऐसी बनावट होती है, ऐसा स्थापत्य होता – कथा सुश्रृंखलित नहीं होती, तब आंचलिकता आती। नागार्जुन के उपन्यासों के अंचल और उसकी स्थनीयता यथार्थ को पुष्ट करती जान पड़ती है, अंचल को नहीं। पक्षधर और प्रतिबद्ध लेखक के रूप में नागार्जुन की चिंताधारा घोर यथार्थवादी है। साहित्य के प्रगतिवादी आन्दोलन ने हिंदी के लेखकों को जो विचारधारा से वामपंथी थे, पार्टी लाइन पर प्रायः खीच लाया था और वे फार्मूलाबद्ध साहित्य लिखने वालों में से नहीं थे। उन्होंने कभी कहा था कि – 'मुझे प्रगतिशील समझो, कम्युनिस्ट नहीं।' फिर भी बौद्ध, आर्य समाज, समाजवाद के साथ उठते–बैठते नागार्जुन अंततः समाजवाद के साथ ही टिकते हैं। यही कारण है कि नागार्जुन अपने रचनात्मक साहित्य से और अपनी चिंतनधारा से यथार्थवाद का विकास कर रहे थे। समाजवादी यथार्थवाद के पैरोकार नागार्जुन का 'यथार्थवाद' उस समाज से स्रोत ग्रहण करता है, जिस समाज का वर्णन उसका यथातथ्य चित्रण एक लेखक के रूप में नागार्जुन कर रहे थे। वस्तु को उसके यथार्थ रूप में वर्णन करना वस्तु की सही–सही रिपोर्टिंग है,नागार्जुन ने अपने यथार्थवादी साहित्य सृजन के पक्ष में बिना कोई तर्क दिए से रिपोर्टिंग से बचाया है और वस्तु को संवेदना शून्य तथा अनुभूति शून्य होने नहीं दिया है, यही लेखक की कला है। यथार्थवादी साहित्य में कला की मौलिक सूझ का पता केवल यह देखने से ही लग सकता है कि लेखक अनुभूति और संचित सामाजिक अनुभव का उपयोग एक कलाकार की तरह कैसे कर रहा है। जैसे ही एक यथार्थवादी लेखक कलाकार की तरह वस्तुजगत् के उपयोग की संकल्प साधना के लिये कलम उठाता है, असंन्धि रूप से वह अपनी टेकनिक, शैली और विचारधारा का भी उपयोग कर लेता है। शिवदान सिंह चौहान ने इसलिए

अभिव्यक्ति, टेकनिक और शैली का महत्व देते हुए यथार्थ साहित्य की सही प्रकृति के मूल्यांकन का एक आधार प्रस्तुत किया है। महान साहित्य और कला निर्विकल्प रूप से ही जीवन की वास्तविकताओं को प्रतिबिंबत करता है। जीवन की वास्तविकताओं को उपस्थित करने के क्रम में यथार्थवादी लेखक पक्षपातहीन, न्यायी और ईमानदार बने रहकर अपनी संवेदना के सहारे साहित्य के लोक रस को पुनर्जीवन देने के उद्देश्य से कला के उस वैयक्तिक दुर्लभ गुणों की साधना करता है। लुक्स जार्ज का कथन यथार्थ वादी साहित्य के संबंध में स्मरण करते हुए कहना जरूरी हो जाता है कि बिना किसी भय के, बिना पक्षपात के ईमानदारी के साथ जो कुछ भी लेखक अपने आस–पास देखता है, उसका चित्रण करता है। व्यक्तिवादी लेखक के पास न यह ईमानदारी होती है, न निर्भयता, उनका साथ देती है कला, केवल कला, साहित्य का रूप, संरचनावाद, कल्पना और सेक्स तथा कुंठा और व्यक्तित्व अंतरण। आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने यथार्थवादियों से विराग का संबंध कायम कर लिया था, इसलिए यथार्थवाद से भी राग का संबंध नहीं बना पाए और यथार्थवादी साहित्य के मूल्यांकन में असंयमित होकर गलत दिशा में चल लिए। उन्होंने लिखा है – “यथार्थवादियों ने हमें एक नया संसार देने को कहा था, पर हमें उनसे मिला एक नया अस्पताला’ लेकिन प्रेमचंद ने कहा – ‘यथार्थवाद चरित्रों को पाठकों के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है। उसे उससे कुछ मतलब नहीं है कि सच्चरित्रता का परिणाम अच्छा होता है कि दुष्चरित्रता का परिणाम बुरा। चरित्र अपनी खूबियां और कमजोरियां दिखाते हुए अपनी जीवन–लीला समाप्त करते हैं।’ जोला जिन भ्रष्ट एवं बुरे लगने लगने वाले चित्रों को प्रस्तुत करने की बात सिर्फ यथार्थ के लिए करते हैं। यथार्थ चित्रण की तीन विधियों की भी चर्चा करते हैं। पहली विधि है संभावित घटना का वर्णन, वर्ण्यवस्तु का विस्तार से वर्णन करते समय किसी प्रकार ओझल न हो। दूसरी विधि है अखबारों की कर्टिंग का उपयोग। तीसरी विधि है डायरी के पन्नों का उपयोग। उन विधियों की चर्चा वे इसलिए करते हैं कि वास्तविकता को स्थायी विश्वास से जोड़ लिया जाए। यथार्थवादी साहित्य कैमरे के द्वारा लिए गए फोटो की तरह यथावत सम्माजिक चिन्न नहीं हो सकता। यथार्थवाद पर विचार करने वाले प्रायः चिंतक ऐसा ही मानते हैं। यथावत वस्तु चित्र प्रकृतवाद का लक्षण है, यथार्थवाद का नहीं। वस्तुतः यथार्थवाद प्रकृतवाद से भिन्न तथ्यों की मान्यता देता हुआ भी चूंकि निर्जीव नहीं होता, और न व्यक्तिपरक सिद्धांत पर आधारित होता है, इसलिए सजीव अनुभूतिप्रवण, संवेदनयुक्त रचनात्मक शक्ति के रूप में कल्पना का उपयोग करके व्यक्तिगत स्वार्थों और व्यक्तित्व निरूपण से अलग समाज के लिए होता है। कहते हैं प्रकृतवाद यथार्थवाद का ही विकसित रूप है। समाज में पाप है, पुण्य है, सुकर्म है, कुकर्म है, अपकारी है, उपकारी हैं, प्रेमी हैं, रोमांटिक पुरुष हैं – इनमें से यथार्थवाद किसी को भी विषय बना सकता है। साहित्य में चित्रित मकान यथार्थवाद का क्षेत्र सामाजिक आधार ग्रहण करके चलने से विशाल बन गया है। पर हिंदी में शोषित पीड़ित तक ही साहित्य का विमर्श कैद हो गया है। यथार्थवाद का यह सीमांकन न उचित है, न संभावना सहित देश–काल और जनसमूह के लिए जरूरी। यथार्थवादी साहित्य में कल्पना के उपयोग की चर्चा आती है अनुदार समालोचक चौंक पड़ते हैं। ऐसे अनुदार प्रगतिशील खेमे में भी कम नहीं हैं। कल्पना यथार्थ के लिए विघातक हैं – वे ऐसा मानते हैं और यह कहते हैं कि कल्पना यथार्थ की शर्त को कमजोर करती है। लेकिन ऐसे धुरंधर आलोचक और पाठक – दोनों को अंग्रेजी साहित्य में यथार्थ के बदले हुए रूप पर भी ध्यान देना चाहिए कि कैसे अंग्रेजी साहित्य मे यथार्थवाद का रूप कल्पनामय और रहस्यमय हो गया है। हिंदी में तो मुक्तिबोध ने फंतासी के माध्यम से ही यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। डॉराम विलास शर्मा ने निराला का मूल्यांकन करते हुए लिखा है – ‘कवि जो कुछ लिखता है, उसे कल्पना में ही देखता है। इसलिए कल्पना को त्यागकर

कविता रचना संभव नहीं। किंतु एक कल्पना वह होती है जो यथार्थ को धुंधला कर देती है। और दूसरी कल्पना से कवि यथार्थ जीवन को देखता है। जिससे वर्णित वस्तु पर खूबसूरती का मुलम्मा नहीं चढ़ता।' डॉ. त्रिभुवन सिंह उपन्यास के यथार्थ पर लिखते हुए जब यह कहते हैं कि एक कल्पना ऐसी होती है जिसके उपयोग से साहित्य द्वारा समाज पर प्रत्यक्ष और परोक्ष कोई प्रभाव नहीं पड़ता, लेकिन दूसरी कल्पना जो यथार्थ को सुंदर ढंग से, प्रस्तुत करती है, समाज पर यथोचित प्रभाव डालती है। सत्य की अभिव्यक्ति ही यथार्थवादी साहित्य का उद्देश्य है। व्यक्त सत्य पर भरोसा करके जो साहित्य रचा जाता है, वही यथार्थवादी साहित्य है। अव्यक्त सत्य पर भरोसा करना आध्यात्मिक जगत् की बात है। दूसरे तरह का अव्यक्त सत्य है व्यक्ति केन्द्रित मन के रहस्य, मन की कुंठा, व्यक्तित्व का अंतरण, व्यक्तित्व का आरोपण आदि। दूसरे तरह के अव्यक्त सत्य की बात मनोविश्लेषणवादी साहित्यकार और साहित्यचिंतक करते हैं। यथार्थवादी लेखक की नीयत सामाजिक सरोकार का साहित्य सृजित करके मूल रूप से समाज को ही दिखाना है कि समाज की दशा और दिशा यह होती जा रही है। साहित्य में गुटबाजी से यथार्थवादी साहित्य को धक्का लगा है। साहित्य की मूल चिंता से मानवतावाद हट रहा है, उसकी जगह गुट के कारण राजनीतिक हस्तक्षेप बढ़े हैं। साहित्य में यथार्थवाद का जन्म युगीन आवश्यकता के कारण हुआ है। यथार्थवाद के जन्म और विकास के सम्बन्ध में स्पष्ट धारणा यह है कि कॉर्ल मार्क्स के राजनीतिक सिद्धांत में स्थापित समाजवाद से ही इसका गहरा संबंध बना हुआ है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से मानवीय व्यवस्था में स्वकार्य ऐसे व्यवस्था परिवर्तन की बात लेकर मार्क्सवाद भारत भी आया। भारतीय उपन्यास–साहित्य और हिंदी उपन्यास साहित्य भी इससे अलग नहीं रह सका। उपन्यास ही विदेशी प्रभाव की उपज है। फ्रेंच साहित्य से यथार्थवाद चलकर भारत आया और साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ही हिंदी और भारतीय उपन्यास में उसने बसेरा बना लिया। फ्रांस में भी फ्रेंच साहित्यकार सतादल ने ही यथार्थवाद का आरम्भ किया था, क्योंकि फ्रांस के पूंजीपति वर्ग की ह्रासोन्मुखी दशाओं से परिचित कराने का क्रांतिकारी कार्य सबसे पहले सत्ता दल ने ही किया था। फिर बालजाक आए। बालजाक ने रोजमर्रे के जीवन को चित्रित करने का काम शुरू किया था, जो आज के परिवेश में मामूली चीज लगती है, लेकिन अपने आरम्भ में यह क्रांतिकारी चित्रण था। फ्लावेयर ने नगण्य और उपेक्षित और हाशिए की जीवन दशा का चित्रण करके बालजाक के बाद एक महत्वपूर्ण क्रांतिकारी काम किया। फ्लावेयर के द्वारा रचनात्मक साहित्य में यथार्थ के इस क्रांतिकारी परिवर्तन से आदर्श और काल्पनिक वृत्तियों के चीथड़े उड़ गए। फ्लावेयर के कारण ही उपन्यास में यथार्थ के पैर सध गए। विक्टेर हूगो फ्लावेयर के समकालीन थे। 'पेरिस का कुबड़ा' और 'अभागे' दो उपन्यास उन्होंने लिखे और दोनों ही उपन्यासों में निम्न पात्रों को जगह दी। उनकी हीन दशाओं का मार्मिक वर्णन किया। उन्होंने फ्लावेयर से हटकर नया केवल यह किया कि निम्न पात्रों में आत्मगौरव की प्रवृत्तियों को उभारा। जोला फ्रांस में तीसरे यथार्थवादी हुए। लेकिन जोला ने केवल प्रयोग के लिए यथार्थवाद का प्रयोग किया था, पर ताज्जुब में डाल देने वाली बात यह है कि देशी और विदेशी साहित्य पर जोला का प्रभाव अनल्प है।

फ्रांस के यथार्थवादी साहित्य के जन्मदाता तो थे स्तादल, पर इसका समुचित विकास और फ्रेंच साहित्य पर भी अत्यधिक प्रभाव रूस के साहित्यकारों का था – यह और भी हैरत में डाल देने वाली आश्चर्यजनक बात है। टाल्सटाय और गोर्की दो महान्उपन्यासकार रूस में ही हुए। विश्व के श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम् उपन्यास लेखक भी यथार्थवाद के क्षेत्र में गोर्की से ही तुलनीय है। लेकिन सर्वहारा की सत्ता रूस में कायम होते ही पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि साहित्यकार मनोविश्लेषणवाद की

शरण में चले गए। लेखक के रूप में यथार्थवाद का प्रतिनिधित्व देने वाले हिंदी साहित्यकारों के प्रतिनिधि मुंशी प्रेमचंद अज्ञेय के मनोविश्लेषणवाद के विरोध में बहुत बड़े पड़ाव स्तम्भ दर्शक आलोक की तरह हैं। वैसे यथार्थ का आरम्भ भारतेंदु युग में ही हुआ था। यथार्थवाद के प्रेरक कारण भारतेंदु और भारतेंदु के लिए मूलतः और मुख्यतः राष्ट्रीय आन्दोलन, नवजागरण, शिक्षित वर्गो के साहस का उदय – ये तीन ही थे। उपन्यास के विकास के दौर से गुजरते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमचंद पूर्व का यथार्थ, उपन्यास में लक्ष्यच्युत था। प्रेमचंद ने ही हिंदी उपन्यास को जासूसी, तिलस्मी, ऐय्यारी दुनिया से अलग करके सामाजिक सरोकार से जोड़ा था। प्रेमचंदोत्तर साहित्य में मुख्य रूप से दो धाराएं प्रत्यक्ष थीं, एक मनोविश्लेषण की, दूसरी मनोजगत् के ही व्यक्तिनिष्ठ प्रेम को घेरकर चलने वाली नारी–पुरुष सम्बन्ध की धारा। प्रेमचंद के सामाजिक सरोकार की प्रगतिशील धारा प्रगतिवादियों के हाथों में नए तरह से मार्क्सवाद के राजनीतिक सिद्धान्त को साथ लेकर चली। नागार्जुन प्रेमचंदोत्तर उपन्यास लेखकों में प्रतिबद्ध थे, लेकिन राजनीतिक हस्तक्षेप के बावजूद साहित्य की आत्मा को मरने नहीं दिया है। नागार्जुन की राजनीतिक विचारधारा, राजनीतिक हस्तक्षेप उनके यथार्थ को पुष्ट करते हैं, उनकी संवेदना में थकान नहीं भरते। उपन्यास संरचनात्मक विधा है। संरचनात्मक विधा के साहित्य में दृष्टिकोण से अधिक दृष्टि का महत्व है। जीवन के बारे में राय से अधिक जरूरी है जीवन की तस्वीर। उपन्यास का जन्म ही यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए हुआ था और इसी रूप में इसका सही विकास भी हुआ है, कुछ अपवाद और विपथन की दीगर है। उपन्यास का विषय होता है व्यक्ति। उपन्यास समाज के विरुद्ध, प्रकृति के विरुद्ध व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य है और यह केवल उसी समाज में विकसित हो सकता है जिसमें व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन नष्ट हो चुका है, जिसमें मानव का अपने सहजीवी साथियों अथवा प्रकृति से युद्ध ठना हो। पूंजीवादी समाज ऐसा ही समाज है। उपन्यास और लोकजीवन नाम की पुस्तक में उपन्यास के संबंध में राल्फफाक्स ने ऐसा विचार रखा है। फिर भी कहना जरूरी लगता है कि हिंदी में दृष्टि का नहीं दृष्टिकोण का विकास हुआ है। विकास के नाम पर हिंदी उपन्यास ने पांच मंजिलें तय की हैं, भले ही भारतीय उपन्यास जैसा कोई अपना उपन्यास साहित्य को नहीं मिला है। भारतीय उपन्यास का अपना कोई शास्त्र नहीं है, जैसे कविता का है। हिंदी उपन्यास की पहली मंजिल है, जिसमें ऐतिहासिक यथार्थ है, दूसरी मंजिल में है प्रकृतवाद; तीसरे स्थान पर आता है अति यथार्थ, चौथा है समाजवादी यथार्थ और पांचवां है मनौवैज्ञानिक यथार्थ। ये ही यथार्थवाद के विकास के भिन्न रूप और प्रकार भी हैं। हिंदी में ऐतिहासिक यथार्थ का सम्यक् विकास हुआ ही नहीं। उल्लेख्य सत्य की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का जैसा सजीव चित्र ऐतिहासिक उपन्यासों के कथानकों से अपेक्षा किया जाताा है, हिंदी ने पूरा नहीं किया। बंगला के ऐतिहासिक उपन्यासों को सामने रखकर तुलना करने पर इस कमी की प्रतीति हो जाती है। फिर भी वृंदावन लाल वर्मा ऐतिहासिक यथार्थ की दृष्टि से हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठ उपन्यास लेखक हैं। चतुरसेन शास्त्री, यशपाल रांगेय राघव आदि उपन्यासकारों में ऐतिहासिक विवेक कम नहीं है। कल्पना हावी होकर चतुरसेन के ऐतिहासिक यथार्थ को कमजोर बनाती है और मार्क्सवाद की प्रतिबद्धता यशपाल और रांगेय राघव को। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की कथा के प्रति आत्मीयता और ऐतिहासिक मिजाज के मध्यकालीन पात्रों के माध्यम से ऐतिहासिक यथार्थ की दृष्टि का कम दृष्टिकोण का ही विकास कर पाए हैं, वह है भारत का सांस्कृतिक दृष्टिकोण। प्रकृतिवादी यथार्थ ही व्यक्त हुआ है – जिसमें कामासक्ति, काम चेष्टाएं ही प्रमुखता पा गई हैं। उग्र, इलाचंद्र जोशी, बहुत हद तक यशपाल भी, अज्ञेय भी, आधुनिक जोशी, बहुत हद तक यशपाल भी, अज्ञेय भी, आधुनिक कथा लेखक सत्येन कुमार – को प्रकृतवाद की कोटि में रखा जा सकता है। प्रकृतवाद की अगली

मंजिल है अतियथार्थवाद। प्रकृतवादियों के यौन प्रसंग के अनावृत्त रूप को और भी उत्तेजक, और भी कामासक्ति के आकर्षण से भरने का काम अति यथार्थवादियों द्वारा हुआ। अतियथार्थवाद में केवल अवचेतन सिद्धांत को माना जाता है। द्वारिका प्रसाद को हिंदी का अतियथार्थवादी उपन्यास लेखक कहना चाहिए। यथार्थवाद का असली और ठोस रूप समाजवादी यथार्थवाद है। उसका बुनियादी रिश्ता मार्क्सवाद और मार्क्सवादी सिद्धांतों के आधार पर विकसित साहित्य के प्रगतिवाद से है। समाजवादी यथार्थवादी को मार्क्सवादी साहित्य चिंतन के प्रतिमान के रूप में स्वीकार किया गया था। अब इसी क्रम में इसको तर्क कुशल स्वरूप के साथ स्थापित विरोध के कारण आलोचनात्मक यथार्थवाद भी कहा जा रहा है। वैसे दोनों में थोड़ा फर्क भी है। व्यक्तिगत रचनात्मकता से उद्‌बुध होना आलोचनात्मक यथार्थ है और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद की सैद्धान्तिकी की आंख से वस्तु को, जीवन की अवलोकित करना समाजवादी यथार्थवाद है। एक तरह का यथार्थ है मनुष्य की अंतवृत्तियों के चित्रण करते हुए नए दृष्टिकोण के विकास में। मनोवैज्ञानिक यथार्थ में व्यक्ति क्या करता है, महत्वपूर्ण यह नहीं है, वह क्या सोचता है, यह महत्वपूर्ण है। लेखक चिंतन प्रवाह के उद्‌घाटन में भाषा को लगा देता है। होता यह है कि भाषा भी पूर्णतः व्यक्ति की अंतर्वृत्ति निरूपक मानसिक वृत्ति को ही साधने में लगी रहती है। इसलिए कहा यह भी जाता है कि मनोवैज्ञानिक यथार्थ व्यक्ति केंद्रित, सामजनिरपेक्ष मानसिक वृत्ति में फंसकर यथार्थ से दूर रह जाता है। मूल बात यह है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के कारण अंतवृत्ति के चित्रण से यथार्थ भले ही वास्तविक समाज की बाह्य निरूपक कला से दूर–दूर चला गया है, लेकिन स्थूल से सूक्ष्म की ओर कला की दौड़ का चित्रण, अंतर्जगत की जटिलताएं मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद ने ही सुलझाएं हैं और सबसे बड़ी बात यह हुई है कि उससे कुंठाओं की गाठें खुली हैं, रचनात्मकता का विकास हुआ है और कला का कद ऊँचा हुआ है। नागार्जुन अंटते हैं समाजवादी यथार्थवाद के खाने में। नागार्जुन के समाजवादी यथार्थवाद की प्रत्यक्ष विशेषताएं वस्तुनिष्ठ कला के क्षेत्र में सामाजिक समस्याओं का ईमानदारी से उद्‌घाटन करने में हैं। व्यवस्था और सत्ता के विरोध में राजनीतिक हस्तक्षेप करते हुए दृष्टिकोण से अधिक दृष्टि स्थापन में है। दृष्टिकोण भी प्रत्यक्ष है। प्रेमचंद की परम्परा का समाजवादी यथार्थ नागार्जुन में मार्क्सवादी दृष्टिकोण का सहारा पाकर बहुत अधिक मजबूत हुआ है। समाजवाद की राजनीति जिस वर्ग–संघर्ष की जमीन से ताकत ग्रहण करती है, साहित्य में उस वर्ग–संघर्ष का व्यावहारिक यथार्थ अनुपस्थित था। उसे कथानक में कथा–प्रवाह के साथ लोकरस को जीवन देते हुए उपस्थित किया नागार्जुन ने। राजनीति से अलग रहकर नागार्जुन के उपन्यासों का अध्ययन न उचित है, न सम्भव। राजनीति का उचित उपयोग करके दृष्टिकोण की सत्यता के प्रति उदारभाव से, बड़ी ही निर्भीकता के साथ समाज को देखने और उसके चरित्र को उद्‌घाटित करने की गजब की क्षमता के दर्शन नागार्जुन में होते हैं, एकदम सधे–मंजे उबाल खाते क्रांतिकारी नीतिरक्षक प्रतिबद्ध पुरुष की तरह। साहित्य के द्वारा दूसरे मार्क्सवादी लेखकों की तरह मार्क्सवाद का प्रचारात्मक रूप इनके साहित्य का लक्ष्य नहीं है। अतः राजनीति उनके साहित्य को विरूप नहीं करती। भारतीय समाज की परम्परा मूलक व्यवस्था के उचित निर्मायक आदर्श पक्ष के गुणों को विसर्जित किये बिना उन्होंने समाजवादी यथार्थवाद का उपयोग किया है। वे कहीं भी कभी भी, किसी तरह भावाभाव के शिकार नहीं हुए हैं। इनके यथार्थ में और यथार्थग्रह में पारम्परिक भारतीय समाज की चारित्रिक विशेषता से चमक आ गई है। प्रेमचंद में भी वर्ग–संघर्ष है, पर दबा हुआ, मुक्ति का उपाय तो है ही नहीं। यथार्थ दशा अधिक उभर गई है। नागार्जुन में वही वर्ग–संघर्ष मुखरा प्रत्यक्ष, दृष्टिकोण के आधार से ताकत ग्रहण करता हुआ व्यावहारिक जमीन पर सीना ताने खड़ा है। मुक्ति का उपाय भी है। मुक्ति है दृष्टिकोण की ताकत से साहसपूर्वक खड़ा होना। अंग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्ति के बाद

सामाजिक शोषण से, कुरीतियों से, मुक्ति के लिए जितना संघर्ष नागार्जुन ने चित्रित किए, कम ही लेखक ने लिखा होगा। नागार्जुन समाजवादी यथार्थ के विकास की परम्परा से कोई छोटा कद के लेखक नहीं है। इस परम्परा में इनका कद बहुत ही ऊँचा है। यह बात और है कि उपन्यासकार के रूप में प्रेमचंद और यशपाल तथा अज्ञेय आदि के कद से छोटा पड़ते हैं। लेकिन उपन्यास की कला, उपन्यास का शिल्प, चरित्र सृष्टि की बारीक बुनावट में भाषा की संरचनात्मकता के बाद वस्तुनिष्ठ कलाकार और समस्या लेखक के रू॰ में नागार्जुन भी अपने क्षेत्र में एक सीमित कालखंड में अद्वितीय थे। मिथिलांचल की समस्या की क्षेत्रीयता सिर्फ स्थूल विषय है, उसकी गूंज व्यापक है और इतना व्यापक है कि इसकी धमक भारत की पूंजीवादी राजनीति के सुरक्षित शासन की किला में भी डर पैदा करने की क्षमता रखती है। रतिनाथ की चाची इनका पहला उपन्यास है। रतिनाथ की चाची के प्रथम संस्करण में यथार्थग्रह के कारण जो अतियथार्थ का समावेश था, उसे नागार्जुन ने दूसरे संस्करण में बाहर कर दिया। नागार्जुन के उपन्यासों में अनेक तरह की सामाजिक समस्याएं अलग–अलग कथानकों में उठाई गई हैं। एक ही उपन्यास में अनेक तरह की समस्याएं हैं, लेकिन केन्द्र में रहती हैं एक समस्या। इनकी समस्याओं के राज केवल यह है कि वे कथानक में समस्या को केन्द्रित करके व्यवस्था के विरुद्ध पाठकों में क्षोभ और क्रोध को जन्म देना चाहते हैं। प्रेमचंद में शोषण का यथार्थ है, समस्याएं हैं, समाज के चरित्र के स्थूल और सूक्ष्म व्यौरे हैं, क्षोभ और क्रोध को जन्म देने वाली मानसिकता नहीं है। मानसिक उद्वेलन की व्यावहारिक जमीन नागार्जुन में है। इनमें प्रेमचंद की तरह व्यापक दृष्टि नहीं है, दृष्टि है भी तो दृष्टिकोण की गोद में। प्रेमचंद ने अलग–अलग उपन्यासों में अलग–अलग समस्याए उठाई थीं। गोदान में सभी समस्याएं एक साथ उपस्थित है। नागार्जुन ने ऐसा नहीं किया है। इनमें प्रेमचंद की तरह ऋण की समस्या नहीं है। महाजनी सभ्यता का व्यापक विजन नहीं है। शोषण का बारीक चित्रण नहीं है। इनमें है विधवा की समस्या, विधव की दुर्दशा का चित्रण, अनमेल विवाह, बाल विवाह, विवाह की जड़ता, अंधविश्वास और अशिक्षा के कारण ग्रामीण जीवन की अनेक समस्याओं का वर्णन। नारी के प्रति समाज की, पुरुष समाज की बे3खी का वर्णन। रूढ़ समाज का यथार्थ चित्रण और कांग्रेसी नेताओं का छद्म, वर्ग संघर्ष, साम्राज्यवादी शक्ति के आधुनिक रिपेलिका कांग्रेस की नीति और नीयत पर से रहस्य का आवरण नोचकर अलग कर देने का कथानक। व्यक्ति चरित्र का बड़ा ही प्रभावकारी और अव्यावहारिक सत्य, धर्म का पाखंड, धर्म के पाखंड को सत्य मानकर उसके द्वारा समाज का शोषण और समाज में अंधविश्वास की जड़ को मजबूत करते जाने के कुपरिणाम का चित्रण। निम्न वर्ग की जागृति, संगठन की शक्ति का महत्व, नारी जाति में भी नवीन आलोक की आहट, निरक्षर महिला में भी वर्ग–संघर्ष और विश्व राजनीति के परिप्रेक्ष्य में समाजवाद का महत्व प्रतिपादन आदि। कम्युनिस्ट पार्टी स्वाधीनता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका से अलग–अलग थी। स्वाधीनता मिलने के बाद 'यह आजादी झूठी है' के नारे लगा रही थी। 1962 में भारत में चीनी घुसपैठ के बाद भारत पर चीन का आक्रमण हुआ और भारत की शर्मनाक हार हुई। कम्युनिस्ट पार्टी भारत की अस्मिता के साथ नहीं थी। इतिहास भारत की कम्युनिस्ट पार्टी को भारतीय लोकतंत्र का सहयोगी नहीं मानता, न तो स्वाधीनता आन्दोलन में मुक्तियुद्ध का हमसफर मानता है। नागार्जुन के द्वारा उनके उपन्यासों में सृजित पात्र उसी कम्युनिस्ट पार्टी के राजनीतिक सिद्धान्त समाजवाद में आस्था रखते हैं। कम्युनिस्ट पार्टी का राजनीतिक सिद्धांत व्यवस्था परिवर्तन में और पूंजीवादी राजनीति से – संचालित सत्ता पर बैठे सामंती मिजाजा की पार्टी के लोगों के लिये बुरा जरूर है, पर सैद्धान्तिकी में यह बुरा नहीं है। ग्रामीण जीवन में अशिक्षा के कारण है। विश्वासी अंधविश्वास, लोलुपता है, स्वाधीनता है, गलाकाट, ईर्ष्या है, धर्म की संकीर्णता है, जातिवाद है, जाति वर्चस्व की राजनीति है, रूढ़िया हैं, नैतिक

परम्पराओं के कारण विकास की गति में अवरोध है – और भारतीय लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में उससे लड़कर मुक्ति पाने का उपाय नहीं है, क्योंकि जिस तरह की सत्ता व्यवस्था से समाज की शक्तियां राज्याधीन होकर संचालित हैं, वह हर तरह की विषमता को ही बढ़ावा दे सकती है। अतः उससे लड़ने और समाज में समता स्थापित करने की विधि का राजनीतिक सिद्धांत समाजवाद ही है। यह अकारण नहीं है कि समाजवाद के प्रति नागार्जुन की आस्था के कारण ही उनके पात्र भी समाजवादोन्मुख है और ग्रहण समस्याओं से लड़कर उससे मुक्ति पाने का उपाय खोजते हैं। उसी क्रम में नागार्जुन में आलोचनात्मक यथार्थवाद आ गया। सत्ता विरोध और दृष्टिकोण की राजनीति के कारण कांग्रेस पार्टी और कांग्रेस के कार्यकर्ताओं की भी आलोचना है। नागार्जुन में पात्रों की कई श्रेणियां हैं। अच्छे पात्र हैं, चरित्र से, सामाजिक व्यवहार में, बुरे पात्र भी हैं, इनमें स्त्रियां भी हैं, पुरुष भी हैं। इन पात्रों के बहाने, जो ग्रामीण जीवन का सत्य उभरा है, वह अभिभूत करता है। रतिनाथ की चाची, यानी प्रथम उपन्यास से लेकर अंतिम उपन्यास तक नागार्जुन के पात्रों के सृजन में पारदर्शी यथार्थ दिखाई पड़ता है। पात्रों के चरित्र गढ़े हुए नहीं है। व्यावहारिक जीवन में स्थितियों का सामना करते मानव–जीवन की त्रासदी का चारित्रिक सत्य का इतना खुला वर्णन अन्यत्र नहीं मिलेगा। दबंगों के द्वारा सामाजिक हैसियत से निम्न वर्ग को वंचित रखने की सामंती सोच पर प्रहार करने के लिए अलग ही उपन्यास लिख डाला गरीबदास। 'बाबा बटेसर नाथ' फंतासी शैली की वर्णनात्मक विधि से लिखा गया साम्राज्य विरोधी ताकत को मजबूत करने वाली ऐतिहासिक दस्तावेज के विरुद्ध एक अभियान कथा है, जो परिचित कराता है अतीत से, जगाता है वर्तमान को। नई पौध, हीरक जयंती, दुखमोचन, इमरितिया, उग्रतारा, रतिनाथ की चाची, वरुण के बेटे और बलचनमा के शिल्प पर, इन उपन्यासों की कला–साधना की लेखकीय दृष्टि पर ध्यानाकर्षण का एक प्रत्यक्ष कारण उसके वस्तु प्रतिपादन और Thematic Pattern है। ऐसा लगता है कि नागार्जुन सच और भौतिक सत्य कहने के लिए प्रसिद्ध हैं और इसीलिए उन्होंने वर्गीय चरित्र उपन्यास के कथानक में रखे हैं। 'वरुण के बेटे' में गढ़पोखर के लिए मछुआरों की संगठन शक्ति से संघर्ष दिखाया गया है। संघर्ष में बच्चे, बूढे, जवान, औरत सब एक जुट हैं। हक हिस्से से की लड़ाई का ऐसा सुंदर वर्णना नागार्जुन के पूर्व तो नहीं ही है, नागार्जुन के बाद के लेखकों के द्वारा भी चित्रित नहीं हुआ है। संघर्ष का नेतृत्व अनपढ़ मधुरी करती है। बलचनमा में अनपढ़ बलचनमा करता है। अनपढ़ और अशिक्षित व्यक्ति भी वर्ग–संघर्ष का नेतृत्व कर सकता है। औरत भी नेतृत्व कर सकती है। यह संकेत है भारतीय राजनीति में शोषण के विरुद्ध संघर्ष के भविष्य का। ग्रामीण जीवन में व्याप्त विषमताएं, व्याप्त शोषण, व्याप्त सामंती सोच, व्याप्त जाति का नाश, व्याप्त धन की अकड़, व्याप्त भ्रष्ट आचरण, व्याप्त चारित्रिक दूषण, व्याप्त पुरुष वर्चस, व्याप्त रूढ़ियां, व्याप्त परम्पराएं, व्याप्त नैतिक मान्यताएं तब तक रहेंगी जब तक मधुरी, बलचनमा, दुखमोचन, गरीबदास, कामेश्वर, उगनी की तरह मन से अंधकार दूर नहीं होगा। बलचनमा अनपढ़, पितृहीन, भैंस चरवाहा रामपुर गांव में, महपुरा में प्रमुख नेता के रूप में वर्ग–संघर्ष चलाता है। वह ग्राम कमेटी का मुखिया बन जाता है। बलचनमा की राजनीतिक चेतना बड़ी ही प्रखर हो गई है। उपन्यास यह कहता है कि भारतीय राजनीति के भविष्य के निर्धारण में इस वर्ग का आना आवश्यक है। आज नागार्जुन के उपन्यासों की वर्ग–चेतना स्पष्ट होती जा रही है, भले ही समाजवाद विचारधारा के रूप में भारत में भी कमजोर पड़ा है। ब्राह्मण और ऊँची जातियों का वर्चस्व सिमट रहा है। आवश्यकता है उस तरह के संगठन की, जिस तरह के संगठन नागार्जुन के उपन्यासों में गांव–गांव में विरोधी शक्तियों से लड़ने के लिए बनाये गये हैं। नागार्जुन के कथानकों से गुजरते हुए यह जरूर आभास होता है कि भारतीय समाज की जीवन–पद्धति की विविधता को प्रकाशित करने के विशाल उद्देश्य से उपन्यास नहीं

लिखे गये हैं। फिर भी समाज का जीवन यथार्थ अनुपस्थित नहीं है। उन्होंने सीमित जीवन–यथार्थ को मुक्त रूप में प्रकाशित किया है। जिस सीमित यथार्थ के प्रकाश के लिए समस्यापूर्ण चरित्र मिथिलांचल के समाज से उठाए हैं, उसमें नारियों की भूमिका अहम् है। सवर्ण और अवर्ण में बंटा हुआ समाज अपनी सामाजिक हैसियत के लिए राजनीतिक और सामाजिक जागरण के रास्ते जितने ऊँचे स्वर में हक की मांग कर रहा है, उसे बड़ा, उससे ज्यादा अहम् है विधवाओं, तरुणी विधवाओं, अनमेल विवाह में फंसी नारी जाति की त्रासदी से उसे मुक्त करने की चिंताधारा को विकसित करना। देह–व्यापार और यौन–शोषण के कुंभीपाक में फंसी नारी को निकालना। नागार्जुन के उपन्यास से नारी जाति की मुक्ति का अहसास जगाने वाली सामाजिक उदारता का संघर्ष पूर्ण उदात्त चेतना जागृत होती है – यह बहुत बड़ी उपलब्धि हैं नागार्जुन के उपन्यास में विवश और लाचारी में फंसी नारी मुक्ति का अथक प्रयास करती हुई भी दिखती है। यह अकारण नहीं है कि पीड़ित नारियों की सहायिका प्रगतिशील और निर्भीकता से भरी हुई नारी के चरित्र भी उपन्यास में नागार्जुन ने उसी समाज से उठाए हैं। जिस समाज का नागार्जुन वर्णन करते हैं, जिस समाज का चरित्र खोलते हैं, उस समाज की वास्तविक स्थिति को प्रत्यक्ष करने का तरीका भी जानते हैं। परिवेश चित्रण द्वारा उन्होंने मिथिलांचल की गरीबी, गांवों के चलन, ग्रामीण जीवन की संस्कृति, ब्राह्मणों की पोंगापंथी, ग्रामीण जीवन का अंधविश्वास, गांव की सामंती धौंस, जातीय अकड़ को दिखाते चलने के बाद खेत, बकरी, पोखरे और बाग, आम और धान की किस्मों का वर्णन करने लगते हैं। रंगहीन गरीबी का जितना प्रत्यक्ष अनुभव नागार्जुन को था, उसे उन्होंने उतार दिया है। ग्रामीण जीवन का लोकरस पर्व–त्योहार, रिवाज वर्णन और अंधविश्वास पूर्ण परंपरित जीवन–शैली के वर्णन में अधिक उभरा है। लेकिन पूरे कथा प्रसंग में, जिससे कथानक बनता है, वे हैं घटनाएं, धटना संयोग, घटनाओं का अंतर्क्षेपहीनता में – कथानक का रैखिक विकास, चरित्र–सब मिलकर वस्तु और अंतर्वस्तु को महत्व प्रदान करते हैं, रूप को नहीं। प्रगतिशील और गतिशील चरित्र तथा तत्कालीन राजनीति का अन्तर्क्षेप, सामाजिक गतिविधियों का प्रभाव, सामयिक समस्याएं – जैसी कोई ठोस बात उनके शिल्प के Voice Structure से अलग नहीं है। नागार्जुन ने स्वीकार किया है कि 'रचना के पहले और बाद में मेरा समूचा ध्यान विषय वस्तु पर होता है, फार्म और कंटेंट पर नहीं। फार्म और टेकनिक पर आवश्यकता से अधिक ध्यान मैंने कभी नहीं दिया।' कह सकते हैं कि इतिवृत्त नागार्जुन की रचना प्रविधि में इतिहास में विचार चिंतन और दृष्ट परिवेश का यथार्थ है। द्वंद्व, अंतविरोधों की सामान्य संगति, मनोजगत् के काल्पनिक रहस्य कथन वस्तु को कहीं से भी नहीं ढंकते। काल्पनिक रहस्य कथन की मनोभूमि का असंगत बयान तो कहीं है भी नही। सिर्फ उनके कथानक का ढांचा दो विरोधी शक्तियों के वर्णन से विकसित होता हुआ बनता है। आरम्भ में वे दोनों विरोधी शक्तियों का ताना–बाना बुनते हैं, फिर उसी का विकास करके अंतिम परिणति तक पहुंचा देते हैं। यह प्रविधि है तो सभी उपन्यासों में, पर बलचनमा और वरुण के बेटे में ज्यादा उभरा हुआ और प्रत्यक्ष है। भाषा में देशज ताप है। प्रविधि में केवल वर्णनात्मक भाषा की विभिन्न शैलियां हैं। आत्मालाप शैली, भाषण–शैली, समांतर शैली, स्मृत–शैली और इन शैलियों के लिए प्रयुक्त वाक्य गठन, सरल, कहीं–कहीं, अनिवार्यतः संयुक्त, लेकिन बहुत कम मिश्र हैं। नागार्जुन की औपन्यासिक भाषा की विशेषता है – ध्वनिमूलक अर्थसंसर्ग की भाषा संरचना का अनूठापन। क्रिया प्रयोग की आधुनिकी और विशेषण से वाक्य में अर्थ कम्पन पैदा करने की कला। काव्यात्मक भाषा के साहित्यिक वाक्य की कमी पूरा करने के उपाय के रूप में वाक्यार्थ को मजबूत करने, वाक्यार्थ को स्पष्टता प्रदान करन और उसे रोचक तथा सुरुचिपूर्ण लोकरस के अनुकूल बनाने के लिये रखे हैं अप्रस्तुत योजना के वाक्य। प्रश्न शैली की साधारण अर्थध्वनि और व्यंग्य के साथ भाषा को – अधिक समर्थ और स्वस्थ बनाने

का काम भी – नागार्जुन की भाषा का एक गुण है। वैसे प्रश्न शैली के ही भीतर अंग्रेजी के 'क्वेश्चन टैग' के ढांचे पर भी वाक्य गठन मिलते हैं, जो आवश्यक नहीं था।

संदर्भ

- नागार्जुन की उपन्यास कला – डॉ० आर०पी० वर्मा
- आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास – डॉ० नगीना जैन
- नागार्जुन का रचना संसार – शोभाकांत
- हिन्दी उपन्यास : एक .... – डॉ० रामदरथ सिंह
- हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद – डॉ० त्रिभुवन सिंह
- हिन्दी उपन्यास : समाज शास्त्रीय विवेचन – चंडी प्रसाद जोशी
- हिन्दी के आंचलिक उपचा रों का लोकतांत्रिक विमर्श – डॉ० ऊषा डोंगरा
- हिन्दी के राजनतिक उपन्यासों का अनुशीलन – डॉ० ब्रजमोहन सिंह
- हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल
- हीरक जयंती उपन्यास – नागार्जुन